antidote

Indian remedies to global issues

(SOLUTIONS TO CONTEMPORARY GLOBAL ISSUES - INDIAN CULTURE AND APPROACH)

Editor

PRINCIPAL

Shri Somnath Education Society

SMT. C.P. CHOKSI ARTS & SHREE P.L. CHOKSI COMMERCE COLLEGE, VERAVAL

स्वास्थ्य एवं अष्टाङ्ग योग की अवधारणा

डॉ. जानकीशरण आचार्य

दर्शनसङ्काय प्रमुख एवं सहायकाचार्य श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालय, वेरावल

योगेन चित्तस्य पलदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

प्रास्ताविकम्–

भारतीय दर्शनों का चरम लक्ष्य प्राणियों को त्रिविध दुःखों से सदा के लिये छुटकारा दिलाना ही है। दुःख निवृत्ति की यह शाश्वत अवस्था विविध दर्शनों में निवृत्ति, मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य, अपवर्ग, निःश्रेयस, निर्वाण, परमपद इत्यादि पदों के अभिहित की गई है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" इस शुतिवाक्य के अनुसार प्रायः सभी दर्शनों में कैवल्य की सिद्धि के लिये पदार्थों के शुद्धज्ञान को किसी-न-किसी तरह अपरिहार्य उपाय के रूप में स्वीकार किया गया है। यह शुद्धज्ञान विभिन्न दर्शनों में तत्त्वज्ञान, सम्यग्ज्ञान, तत्त्वसाक्षात्कार, परमज्ञान, विज्ञान, परप्रसंख्यान, विवेकख्याति आदि नामों से कहा गया है। इस विशुद्ध ज्ञान के दो रूप है जिसमें से पहला रूप तो यह है जो बुद्धि की शुद्ध सात्त्विक-वृत्ति के द्वारा प्राप्त किया जाता है और दूसरा तथा उत्तम रूप वह है जो वृत्तिहीन अवस्था में आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है।

बुद्धि की सात्त्विक वृत्ति से प्राप्त विशुद्ध ज्ञान सांख्य योग में "विवेकख्याति" के नाम से प्रसिद्ध है और वृत्तिहीन अवस्था में आत्मा का अपरोक्ष अनुभव योगशास्त्र में "असम्प्रज्ञात योग" के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने की प्रक्रिया बड़ी दुरूह और जटिल है। सभी भारतीय दर्शन अपने-अपने ढंग से इस ज्ञान को उत्पन्न करने वाली योगसाधना को अपनाते हुए मोक्षप्रद तत्त्वज्ञान की उपलब्धि का वर्णन करते है। परन्तु योगशास्त्र इस उभयस्तरीय प्रक्रिया का रचनात्मक और और प्रक्रियात्मक मार्गदर्शन करता है। योगदर्शन में इस प्रक्रिया के समस्त अंगों, भूमिकाओं, साधनाओं और सिद्धियों का शास्त्रीय सन्दर्भों में प्रामाणिक निरूपण होने से योगदर्शन की सर्वग्राह्यता, सर्वव्यापकता, उपयोगिता, लोकप्रियता और सार्वजनीनता सभी दर्शनों में समान रूप से स्वीकार की गई है।

योग शब्द का अर्थ

योग शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार "युज्" धातु में "घञ्" प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु तीन गणों में प्रयुक्त हुआ है –

(१) "युज् – समाधौ" दिवादिगणीय धातु (आत्मनेपदी)

(२) "युजिर् – योगे" रुधादिगणीय धातु (उभयपदी)

(३) "युज् – संयमने" चुरादिगणीय धातु (परस्मैपदी)

इन तीनों धातुओं से बने अलग-अलग पदों का अर्थ क्रमशः १. समाधि, २. जोड़ और ३. संयमन होता है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा अनुशासित योगदर्शन योग शब्द का अर्थ "समाधि" या "चित्तवृत्तिनिरोध" है, जैसा कि प्रथम सूत्र पर व्यासभाष्य में कहा गया है "योगः समाधिः, स च सार्वभौमः चित्तस्य धर्मः"।1 अब यह तो ज्ञात हो गया कि कि पातञ्जल योगदर्शन की व्युत्पत्ति की दृष्टि से समाधि या चित्तवृत्तिनिरोध योग हुआ, परन्तु चित्तवृत्ति का निरोध तो कुछ न कुछ सब को और सदा होता ही रहता है, तो क्या हर एक प्राणी प्रतिक्षण किसी न किसी अंश में योग सिद्ध किये रहता है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। योग का अर्थ चित्तवृत्तिनिरोध या समाधि अवश्य है, पर प्रत्येक समाधि या चित्तवृत्तिनिरोध को योग नहीं कहा जा सकता है। तो फिर योग किसको कहेंगे? इस प्रश्न का समाधान स्वयं योगसूत्रकार ने बड़ी चतुराई से दिया है। योगसूत्रों का क्रम पढ़ने पर इसका उत्तर स्वतः ही मिल जाता है। योगसूत्रों का क्रम इस प्रकार है –

१. अथ योगानुशासनम् ।2

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।3

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।4

तीसरे सूत्र में आया "तदा" यह पद बताता है कि योग के सिद्ध होने पर द्रष्टा की अपने वास्तविक (चिन्मात्र) रूप में स्थिति या प्रतिष्ठा हो जाती है। अतः जिस-जिस चित्तवृत्तिनिरोध या समाधि से कैवल्य प्राप्त न हो सके अर्थात् जीवात्मा की अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठा न हो, वह-वह चित्तवृत्तिनिरोध समाधिमात्र है, योग नहीं। इसे हम इस तरह भी कह सकते है कि यद्यपि प्रत्येक समाधि है, पर प्रत्येक समाधि योग नहीं है। कुछ विशिष्ट समाधियां ही योग कही जा सकती है।

अष्टांग योग –

योग की इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में अष्टांगयोग की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। ये आठ अंग इस प्रकार है –

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि"5।

योग के आठ अंग हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग के आठ चरण। यह है योग का संपूर्ण विज्ञान एक वाक्य में, एक बीज में। बहुत सी बातों की ओर संकेत है। पहले योग के प्रत्येक चरण का ठीक—ठीक अर्थ समझ लें। और खयाल रहे, पतंजलि उन्हें चरण और अंग दोनों ही कहते हैं। वे दोनों ही हैं। वे चरण हैं क्योंकि एक चला आता है दूसरे के पीछे; विकास का एक अनुक्रम है। लेकिन वे चरण ही नहीं हैं, वे योग की देह के अंग भी हैं। उनका एक आंतरिक जुड़ाव है, उनका एक जीवंत अंतर्संबंध है, यही है अंग का अर्थ।

उदाहरण के लिए मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरा हृदय—वे अलग— अलग काम नहीं करते। वे एक—दूसरे से अलग नहीं हैं, वे जुड़े हुए हैं। यदि हृदय रुक जाए तो फिर हाथ नहीं चलेगा। हर चीज जुड़ी हुई है। वे सीढ़ी के सोपानों की भांति नहीं हैं, क्योंकि सीढ़ी का तो हर डंडा अलग होता है। यदि एक डंडा टूट जाए तो पूरी सीढ़ी नहीं टूट जाती। इसलिए पतंजलि कहते हैं कि वे चरण हैं, क्योंकि उनका एक सुनिश्चित विकास है—लेकिन वे अंग भी हैं, शरीर के जीवंत अंग हैं। तुम उन में से किसी एक को छोड़ नहीं सकते हो। सोपान छोड़े जा सकते हैं; अंग नहीं छोड़े जा सकते। तुम दो चरण कूद सकते हो एक ही छलांग में, तुम एक चरण छोड़ सकते हो; लेकिन अंग नहीं छोड़े जा सकते हैं, वे कोई यांत्रिक हिस्से नहीं हैं। तुम उन्हें हटा नहीं सकते। वे तुम्हें निर्मित करते हैं। वे समग्र के साथ संबंधित हैं, वे पृथक नहीं हैं। समग्रता उनके द्वारा एक इकाई की भांति काम करती है।

योग का पहला अंग-यम, यम के पांच विभाग है - 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह।6

1. यम –

अहिंसा यम और नियम की भूमि है। आगे सत्य से लेकर अपरिग्रह तक के यम और पांचों नियमों की सिद्धि अहिंसा पर ही आधारित है। अहिंसा को पुष्ट करना ही उनका मुख्य लक्ष्य है। अहिंसा की सिद्धि के लिए उनका आचरण किया जाता है। 'यम' एक सुंदर शब्द था पतंजलि के समय में, सुंदरतम शब्दों में से एक था। पतंजलि के लिए आत्म—संयम का अर्थ स्वयं का दमन नहीं है। इसका अर्थ है स्वयं के जीवन को दिशा देना—ऊर्जाओं का दमन नहीं, बल्कि निर्देशन; उन्हें सम्यक दिशा देना।

लोक में यह मान्यता है कि किसी को कष्ट, पीड़ा व दुःख देना हिंसा है। इसके विपरीत अहिंसा है। इस मान्यता को स्वीकार किया जाये, तो संसार में ऐसा कोइ व्यक्ति नहीं है, जो अन्यों को कष्ट नहीं देता है। माता, पिता, गुरु, समाज, राष्ट्र व सभी प्राणी एक दूसरे को कष्ट देते हैं। इश्वर कर्मफल प्रदाता होने से संसार में सर्वाधिक कष्ट देता है। क्या इससे इश्वर हिंसक हो जाता है ? वेद में इश्वर को पूर्ण अहिंसक स्वीकारा है। माता-पिता, शिक्षक, अधिकारी आदि सुधारने के लिए हमारी तुटियों का दण्ड देते हुए हमें कष्ट देते हैं, क्या उनका यह कर्म हिंसा हो जायेगा ? वेद व ऋषियों का मन्तव्य यही कहता है कि, हिंसा व अहिंसा अन्याय व न्याय पर खड़ी है। न्याय पूर्वक दण्ड-कष्ट देना भी अहिंसा है व अन्याय पूर्वक पुरस्कार-सुख देना भी हिंसा है।

यहां एक महत्त्वपूर्ण तथ्य जिसके विषय में आज समाज में भ्रान्तिपूर्ण माहौल है पर प्रकाश डालना आवश्यक है। स्वयं हिंसा न कर दूसरों द्वारा हिंसा किए जाने को मूक द्रष्टा बन देखते रहना भी हिंसा ही है। हिंसा का मूल 'अन्याय' है। दूसरो पर होते अन्याय का उचित प्रतिरोध न करना हिंसा का समर्थन करना ही है। इसलिए यह आवश्यक है कि अहिंसा का व्रत लेने वाला व्यक्ति स्वंय हिंसा न करने के साथ-साथ दूसरों द्वारा हिंसा किए जाने के विरोध में आवाज़ भी उठाए। हाँ, इसका दूसरों द्वारा हिंसा किए जाने के विरोध में आवाज़ उठाना उतना ही सार्थक होगा जितना वह स्वंय दूसरों के प्रति हिंसा नहीं करता होगा।

१. सत्य –

सत्य का लक्षण करते समय योगभाष्यकार ने कहा है कि "सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे। यथा दृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्च"। जो चीज़ जैसी है उसे वैसा ही जानना व मानना सत्य कहलाता है। उदाहरण के तौर पर सांप को सांप जानना व मानना सत्य कहलाएगा और सांप को रस्सी जानना व अन्यथा रस्सी को सांप जानना असत्य कहलाता है। साधरणतया यह कहा जाता है कि जिस झूठ से किसी का भला होता हो उसे बोलना कोइ गलत नहीं। यह ठीक नहीं। हमें सदा अपनी वाणी से ठीक वैसी ही बात करनी चाहिए जैसी कि हमारी आत्मा में किसी घटना अथवा वस्तु के बारे में जानकारी हो।

२. अहिंसा –

सत्य का पालन अहिंसा की सिद्धि के लिए ही किया जाता है। झूठ बोलने से भी हिंसा होती है। कैसे? 'हिंसा का अर्थ है-अन्याय पूर्वक पीड़ा, दुःख, कष्ट देना। जब बालक माँ से झूठ बोलता है तो माँ को इससे अतीव कष्ट होता है। आप दुकानदार हैं तो ग्राहक को झूठ बोलकर पीड़ा पहुँचा रहे हो। आप नौकरी के प्रत्याशी हैं, आपने झूठ बोल कर नौकरी ली तो जिसे नौकरी मिलनी थी, आपके कारण वह वंचित हो गया है, उसे वंचित होने पर दुःख मिला, यह हिंसा है। जहाँ भी हम झूठ बोलतें हैं निश्चित

रूप से हम वहाँ पर हिंसा ही कर रहे हैं। वहाँ अन्याय पूर्वक दूसरों को दुःख देते हैं। जिसे हम हिंसा द्वारा पीड़ा पहुँचा रहे हैं, उसका फल हमें निश्चित रूप से मिलने वाला है। इस से हम छूट नहीं सकते। इसीलिये ऋषि कहते हैं कि सत्य ऐसी एक शक्ति है जिसे अपनाने पर मनुष्य को आगे होने वाले पापों को छूटने की शक्ति प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त और कोरड़ मार्ग नहीं है।

३. अस्तेय –

अस्तेय का शाब्दिक अर्थ है चोरी न करना। किसी दूसरे की वस्तु को पाने की इच्छा करना मन द्वारा की गरड़ चोरी है। शरीर से अथवा वाणी से तो दूर, मन से भी चोरी न करना। किसी की कार को देखकर उसे पाने की इच्छा करना, किसी सुन्दर फूल को देखकर उसे पाने की चाह करना आदि चोरी ही तो है।

४. ब्रह्मचर्य – शरीर के सर्वविध सामर्थ्यों की संयम पूर्वक रक्षा करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। इन्द्रियों पर जितना संयम रखते हैं उतना ही ब्रह्मचर्य के पालन में सरलता रहती है। इन्द्रियों की चंचलता ब्रह्मचर्य के पालन में बाधक है। अपने लक्ष्य के प्रति सजग रहते हुए सदा पुरुषार्थी रहने से ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता मिलती है। महापुरुषों, वीरों, ऋषियों, आदर्श पुरुषों के चरित्र को सदा समक्ष रखना चाहिए।

५. अपरिग्रह – मन, वाणी व शरीर से अनावश्यक वस्तुओं व अनावश्यक विचारों का संग्रह न करने को अपरिग्रह कहते हैं। अपरिग्रह का पालन भी अहिंसा की सिद्धि के लिए ही किया जाता है। परिग्रह सदैव दूसरों को पीड़ा देकर ही किया जाता है। अनावश्यक वस्तुओं का, अनावश्यक विचारों का, उचित-अनुचित स्थानों से निरुद्देश्य संग्रह करना परिग्रह है। इसके विपरीत ऐसा न करने को अपरिग्रह कहते हैं। यदि कभी अधिक संग्रह भी हो जाये तो शेष को दान करते रहना चाहिए। इस दान से उपजे आत्म संतुष्टि के भाव का मूल्य संसार के मूल्यवान पदार्थों से भी अधिक ही रहेगा।

२. नियम –

दूसरा चरण है 'नियम'। एक सुनिश्चित नियमन : वह जीवन जिसमें कि अनुशासन है, वह जीवन जिसमें कि नियमितता है, वह जीवन जो कि बहुत ही अनुशासित ढंग से जीया जाता है, अव्यवस्थित नहीं। एक नियमितता है। लेकिन वह भी तुम्हें गुलामी जैस लगेगा। पतंजलि के समय के सारे सुंदर शब्द अब कुरूप हो गए हैं। लेकिन जब तक जीवन में नियमितता नहीं आती, अनुशासन नहीं आता, तब तक गुलाम अपनी वृत्तियों के गुलाम ही बने रहते है और हमें लगता है कि यही स्वतंतृता है, लेकिन यह गुलामी है अपने आवारा विचारों की, यह स्वतंतृता नहीं है।

यम का संबंध मुख्य रूप से अन्यों के साथ है और नियम का संबंध मुख्य रूप से वैयक्तिक जीवन के साथ है। विशेष रूप से स्वयं के दुःखों से छुड़ाने वाला होने से इसे नियम कहते हैं। नियम के पाँच विभाग हैं -1. शौच, 2. संतोष, 3. तप, 4. स्वाध्याय, 5. ऱ्इश्वर-प्रणिधान।

३. आसन –

फिर तीसरा है अंग है – 'आसन'। प्रत्येक चरण पहले आने वाले चरण से आता है। जब जीवन में नियमितता होती है, केवल तभी आसन उपलब्ध होता है। आसन केवल उसी व्यक्ति को घटित होता है, जो संयम का जीवन जीता है, नियमितता का जीवन जीता है; केवल तभी आसन संभव होता है।

आज आसन को योग का पर्याय और आसन का मुख्य उद्देश्य शरीर को रोग मुक्त करना माना जाने लगा है। आसन करने पर गौण रूप से शारीरिक लाभ भी होते हैं। परन्तु आसन का मुख्य उद्देश्य प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। जिस शारीरिक मुद्रा में स्थिरता के साथ लम्बे समय तक सुख पूर्वक बैठा जा सके उसे आसन कहा गया है। शरीर की स्थिति, अवस्था व सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न आसनों की चर्चा की गरड़ है। चलते-फिरते, उछलते - कूदते, नाचते-गाते हुए ध्यान नहीं हो सकता। ध्यान के लिए बैठना आवश्यक है। मन को अगतिशिल ऱ्इश्वर में लगाना तभी सम्भव है जब हम अपने शरीर को स्थिर अथवा अचल करें। अचलता से ही पूर्ण एकाग्रता मिलती है। उछलते, कूदते-नाचते हुए मन को पूरा रोकना, पूर्ण एकाग्र करना सम्भव ही नहीं है।

४. प्राणायाम –

यदि शरीर शांत हो, तो तुम अपनी श्वास को नियमित कर सकते हो। अब तुम और ज्यादा गहरे उतर रहे हो, क्योंकि श्वास शरीर और आत्मा के बीच, शरीर और मन के बीच एक सेतु है। यदि तुम श्वास को नियमित कर सको—यही है प्राणायाम—तो अपने मन पर तुम्हारी मालकियत हो जाती है।

प्राणायाम मानव चेतना की महानतम खोजों में एक है। प्राणायाम की तुलना में चांद तक पहुंच जाना भी कुछ नहीं है। बात बड़ी रोमांचक लगती है, लेकिन है उसमें कुछ भी नहीं। क्योंकि तुम चांद पर पहुंच भी जाओ, तो तुम करोगे क्या वहां? यदि तुम पहुंच भी जाओ चांद पर तो भी तुम रहोगे तो वही के वही। तुम जारी रखोगे वही मूढ़ताएं जो तुम यहां कर रहे हो।

प्राणायाम एक अंतर्यात्रा है। और प्राणायाम चौथा चरण है—और कुल आठ चरण हैं। आधी यात्रा पूरी हो जाती है प्राणायाम पर। वह आदमी जिसने प्राणायाम सीख लिया है—किसी शिक्षक से नहीं, क्योंकि वह तो झूठी बात है, मैं उसके पक्ष में नहीं—लेकिन जिस व्यक्ति ने अपनी खोज और अपने होश द्वारा प्राणायाम सीखा है, जिसने अपनी अस्तित्वगत लय को सीख लिया है, उसने आधी मंजिल तो पा ही ली है। प्राणायाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोजों में से एक है। प्राणायाम से ज्ञान का आवरण जो अज्ञान है, नष्ट होता है। ज्ञान के उत्कृष्टतम स्तर से वैराग्य उपजता है। कपाल-भाति, अनुलोम-विलोम आदि प्राणायाम नहीं बल्कि श्वसन क्रियाएं हैं। ये क्रियाएं हमें अनेको रोगों से बचा सकने में सक्षम है परन्तु इन्हें अपने आहार-विहार को सूक्ष्मता से जानने-समझने व जटिल रोगों में आयुर्वेद की सहायता लेने का विकल्प समझना हमारी भूल होगी। प्राणायाम सबके लिए महत्त्वपूर्ण व आवश्यक क्रिया है। प्राणायाम में प्राणों को रोका जाता है प्राणायाम चार ही है जो पतंजलि ऋषि में अपनी अमर कृति योग दर्शन में बताए हैं।

पहला – फेफड़ों में स्थित प्राण को बाहर निकाल कर बाहर ही यथा साम्थर्य रोकना और घबराहट होने पर बाहर के प्राण (वायु) को अन्दर ले लेना।

दूसरा - बाहर के प्राण को अन्दर (फेफड़ों में) लेकर अन्दर ही रोके रखना और घबराहट होने पर रोके हुए प्राण (वायु) को बाहर निकाल देना।

तीसरा – प्राण को जहां का तहां (अन्दर का अन्दर व बाहर का बाहर) रोक देना। और घबराहट होने पर प्राणों को सामान्य चलने देना।

चौथा – यह प्राणायाम पहले व दूसरे प्राणायाम को जोड़ करके किया जाता है। पहले तीनों प्राणायामों में वर्षों के अभ्यास के पश्चात कुशलता प्राप्त करके ही इस प्राणायाम को किया जाता है।

५. प्रत्याहार –

प्रत्याहार का मोटा स्वरूप है संयम रखना, इन्द्रियों पर संयम रखना। प्रत्याहार की सिद्धि के बिना हम अपने मन को पूर्णत्या परमात्मा में नहीं लगा सकते।

६. धारणा – अपने मन को अपनी इच्छा से अपने ही शरीर के अन्दर किसी एक स्थान में बांधने, रोकने या टिका देने को धारणा कहते हैं। वैसे तो शरीर में मन को टिकाने के मुख्य स्थान मस्तक, भूमध्य, नाक का अग्रभाग, जिह्वा का अग्रभाग, कण्ठ, हृदय, नाभि आदि हैं परन्तु इनमें से सर्वोत्तम स्थान हृदय प्रदेश को माना गया है। जहां धारणा की जाती है वहीं ध्यान करने का विधान है। ध्यान के बाद समाधि के माध्यम से आत्मा प्रभु का दर्शन करता है और दर्शन वहीं हो सकता है जहां आत्मा और प्रभु दोनों उपस्थित हों। प्रभु तो शरीर के अन्दर भी है और बाहर भी परन्तु आत्मा केवल शरीर के अन्दर ही विद्यमान हैं। इसलिए शरीर से बाहर धारणा नहीं करनी चाहिए।

७. ध्यान –

ध्यान का अर्थ कुछ भी न विचारना, विचार-शुन्य हो जाना नहीं है। जिस प्रकार पीपे (टिन) में से तेल आदि तरल पदार्थ एक धारा में निकलता है उसी प्रकार प्रभु के एक गुण (आनन्द, ज्ञान आदि) को लेकर सतत् चिन्तन करते रहना चाहिए। जैसे सावधानी के हटने पर तेल आदि की धारा टूटती है। वैसे ही किसी एक आनन्द आदि गुण के चिन्तन के बीच में अन्य कुछ चिन्तन आने पर ध्यान-चिन्तन की धारा टूट जाती है। ध्यान में एक ही विषय रहता है, उसी का निरन्तर चिन्तन करना होता है।

८. समाधि –

ध्यान करते-करते जब परोक्ष वस्तु का प्रत्यक्ष (दर्शन) होता है, उस प्रत्यक्ष को ही समाधि कहते हैं। जिस प्रकार आग में पड़ा कोयला अग्नि रूप हो जाता है और उसमें अग्नि के सभी गुण आ जाते हैं। उसी प्रकार समाधि में जीवात्मा में ईश्वर के सभी गुण प्रतिबिंम्बित होने लगते हैं। जीवात्मा का मात्र एक प्रयोजन मुक्ति प्राप्ति है और योगी इस प्रयोजन को समाधि से पूर्ण करता है।

1 योगसूत्र १.१ पर व्यासभाष्य

2 योगसूत्र १.१

3 योगसूत्र १.२

4 योगसूत्र १.३

5 योगदर्शन, २.२९

6 **"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः" – योगदर्शन, २.३०**